[1990] 1 उम० नि० प० 474

महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड

बनाम

ठाणे इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी और अन्य

13 अप्रैल, 1989

मुख्य न्यायमूर्ति आर० एस० पाठक, न्यायमूर्ति सव्यसाची मुखर्जी, एस० नटराजन्, एम० एन० वेंकटाचलय्या और एस० रंगनाथन्

विद्युत् अधिनियम, 1910—धारा 6, 10 और 11—उक्त अधिनियम के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति के अनुसरण में विद्युत् प्रदाय उपक्रम का कारबार, जो लोक उपयोगिता सेवा है, उक्त कानून के निबंधनों द्वारा व्यापक रूप से नियंत्रित है। उन निबंधनों में, जिनके आधार पर अधिकार सर्जित और प्रदत्त किया जाता है, कानून द्वारा एक पक्षीय रूप में उपांतरण किया जा सकता है। ऐसे निबंधनों में, जिनमें अनुज्ञप्तिधारी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए एकपक्षीय रूप से परिवर्तन किया जा सकता है, प्रबंध ग्रहण के लिए संदेय कीमत के निर्धारण से संबंधित निबंधन भी सम्मिलित हैं।

भारतीय विद्युत् (महाराष्ट्र संशोधन) अधिनियम, 1976—धारा 5 और 7—(1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा यथासंशोधित)—1910 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का प्रभाव यह सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए समाज के तात्विक संसाधनों के नियंत्रण और स्वामित्व का अंतरण है कि उनका इस प्रकार वितरण किया जाता है, जिससे कि सामान्य हित की अधिकतम पूर्ति हो सके। वस्तुतः उक्त उपबंधों द्वारा इस पद के व्यापक अर्थ में 'राष्ट्रीयकरण' लाया गया है।

भारतीय विद्युत् (महाराष्ट्र संशोधन) अधिनियम, 1976—धारा 4, 5 और 6, (सपठित संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14, 19, 31 और 39-ख)—1976 के संशोधन-अधिनियम के उपबंधों का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्य से प्रत्यक्ष और सारभूत संबंध हैं और इसलिए वे इस अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के हकदार हैं। अतः अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उल्लंघन के आधार पर उन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती है।

प्रत्यर्थी-कंपनी, स्थानांतरण द्वारा अनुज्ञप्ति के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में बिजली के प्रदाय और वितरण के लिए भारतीय विद्युत् अधिनियम, 1910 के अधीन तत्कालीन मुंबई सरकार द्वारा अनुदत्त ठाणे विद्युत् अनुज्ञप्ति, 1927 के फायदे और विशेषाधिकारों के लिए हकदार हो गई। बाद में प्रत्यर्थी-कंपनी फर्म मैसर्स पी० पटेल एंड कंपनी से अनुज्ञप्ति लेने के उद्देश्य से प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में बनाई गई। सरकार ने उक्त प्राइवेट लिमिटेड कंपनी को अनुज्ञप्ति के अंतरण के लिए सहमति दे दी। तत्पश्चात् उक्त प्राइवेट लिमिटेड कंपनी पब्लिक लिमिटेड कंपनी हो गई। अनुज्ञप्ति समय के व्यतीत होने के कारण तारीख 21 सितंबर, 1977 को समाप्त होनी थी। अनुज्ञप्ति के खंड 11 में, जैसा कि प्रायः ऐसी मंजूरियों में होता है, अनुज्ञप्ति की अवधि की समाप्ति पर उपक्रम को खरीदने के लिए सरकार को विकल्प की

परिकल्पना की गई थी। संशोधन अधिनियम, 1976 के लिए विधेयक तारीख 13 जुलाई, 1976 को विधानमंडल में पुरःस्थापित किया गया। राज्य विद्युत् बोर्ड ने तारीख 26 अगस्त, 1976 की सूचना द्वारा, जिसकी कंपनी पर तामील की गई, अनुज्ञप्ति की अवधि की समाप्ति पर उपक्रम को खरीदने के अपने विकल्प का प्रयोग किया और तद्नुसार कंपनी से 21 और 22 सितंबर, 1977 की मध्य रात्रि को अपीलार्थी-बोर्ड को उक्त उपक्रम बेचने और परिदत्त करने की अपेक्षा की। विद्युत् अधिनियम, 1910 के उपबंधों द्वारा, जैसे कि वे विकल्प का प्रयोग किए जाने के दिन थे, कंपनी उपक्रम के बाजार मूल्य का संदाय किए जाने के लिए हकदार हो गई। संशोधन-अधिनियम, 1976 तारीख 20 सितंबर, 1976 को विधि बन गया। संशोधित उपबंध ऐसे मामलों में लागू होने थे, जिनमें संशोधन से पूर्व सूचनाएं जारी की जा चुकी थीं। कंपनी और उसके अंशधारकों ने, संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(च) और (छ) तथा 31 का उल्लंघन करने के आधार पर 1976 के संशोधन अधिनियम को चुनौती दी। अपीलार्थियों—महाराष्ट्र राज्य और राज्य विद्युत् बोर्ड—ने 1976 के संशोधन अधिनियम के लिए अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का दावा किया और अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उल्लंघन के आधार पर आपत्ति से पारिणामिक उन्मुक्ति का भी दावा किया। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों के इस दावे को अस्वीकार कर दिया कि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त था, किंतु उच्च न्यायालय के संशोधन-अधिनियम की धारा 4 के बारे में यह घोषित किया कि उससे अनुच्छेद 19(1)(च) और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता था। राज्य और विद्युत् बोर्ड ने उच्च न्यायालय के इस मत की शुद्धता को चुनौती दी कि 1976 के संशोधन-अधिनियम की धारा 4 अविधिमान्य थी, जबकि कंपनी ने, 1985 की अपनी सिविल अपील सं० 243 में, उसके विरुद्ध अभिनिर्धारित मुद्दों पर निर्णय की शुद्धता को चुनौती दी है। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—1976 के संशोधन-अधिनियम का प्रभाव सारतः यह था कि 'बाजार-मूल्य' की संकल्पना 'रकम' की संकल्पना द्वारा प्रतिस्थापित की गई, जो उसके परिदान के समय उपक्रम का बही-मूल्य थी। 'बही-मूल्य' 1910 के अधिनियम की धारा 11 के अनुसार अनुज्ञप्तिधारी द्वारा दिए गए लेखाओं में यथादर्शित, सभी भूमियों, भवनों, संकर्मों, सामग्रियों और संयंत्रों आदि का अवक्षीण बही-मूल्य माना गया। अनुज्ञप्तिधारी को ऐसे बही-मूल्य के दस प्रतिशत का तोषण (सोलेशियम) दिया गया। 1976 के संशोधन-अधिनियम के उपबंध सभी अनुप्तिधारियों को लागू किए गए, जिनमें ऐसा अनुज्ञप्तिधारी भी सम्मिलित था, जिस पर उपक्रम को बेचने की उससे अपेक्षा करने वाली सूचना की, 1976 के संशोधन-अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व, तामील कर दी गई थी किंतु अधिनियम के संशोधन से पूर्व क्रय-कीमत अवधारित नहीं की गई थी। 1976 के संशोधन अधिनियम का परिणाम यह था कि कंपनी के, उसके उपक्रम के लिए संदाय हेतु हक को भी, जिसकी बाबत बोर्ड के क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करने वाली सूचना 1976 के संशोधन के प्रवृत्त होने की तारीख से पूर्व अर्थात् तारीख 26 अगस्त, 1976 को तामील की गई थी, 1976 के संशोधन-अधिनियम के उपबंध लागू हुए। उपबंधों के आधार पर, जैसे कि वे उस समय थे, प्रत्यर्थी-कंपनी इन उपबंधों के अधीन यथा-अवधारणीय बाजार-मूल्य के संदाय के लिए हकदार थी, जबकि प्रत्यर्थी-कंपनी 1976 के संशोधन-अधिनियम के आधार पर अब रकम के संदाय के लिए हकदार हो गए,

जो बाजार-मूल्य के बजाय सभी भूमियों, भवनों, और संकर्मों आदि के 'अवक्षीण बही-मूल्य' के बराबर थी और उसे निरूपित करती थी। (पैरा 6)

विधान में अभिव्यक्त विधायी घोषणा अनुच्छेद 31-ग के लागू किए जाने के लिए पुरोभाव्य शर्त नहीं है। उच्च न्यायालय इस मुद्दे पर स्पष्टतः मिथ्या धारणा के अधीन रहा कि स्वयं विधि में अभिव्यक्त घोषणा आवश्यक थी। विधि और अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के बीच संबंध विधानमंडल द्वारा ऐसी किसी घोषणा से स्वतंत्र रूप में दर्शित किया जा सकता था। अभिव्यक्त घोषणा के रूप में संबंध के साक्ष्य का अभाव स्वतः ऐसे संबंध के अभाव का साक्ष्य नहीं था। (पैरा 11)

विद्युत् अधिनियम, 1910 के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति के अनुसरण में विद्युत प्रदाय उपक्रम का कारबार, जो लोक उपयोगिता सेवा है, उक्त कानून के निबंधनों द्वारा व्यापक रूप से नियंत्रित है। उन निबंधनों में, जिनके आधार पर अधिकार सर्जित और प्रदत्त किया जाता है, कानून द्वारा एकपक्षीय रूप में उपांतरण किया जा सकता है। ऐसे निबंधनों में, जिनमें अनुज्ञप्तिधारी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए एकपक्षीय रूप से परिवर्तन किया जा सकता है, प्रबंध-ग्रहण के लिए संदेय कीमत के निर्धारण से संबंधित निबंधन भी सम्मिलित है। इस प्रतिपादना को स्वीकार करना कठिन है कि कीमत के संदाय का अधिकार उपक्रम के स्वामित्व के वास्तविक अंतरण से स्वतंत्र रूप में या उससे पूर्व भी वाद-वस्तु में स्पष्ट हो जाता है। (पैरा 17)

यदि विद्युत् अधिनियम, 1910 के उपबंधों के बारे में यह मान भी लिया जाता है और उन्हें इस प्रकार समझ भी लिया जाता है कि उनमें केवल सम्मतिजनित विक्रय की युक्ति द्वारा ही प्राइवेट स्वामित्व वाले उपक्रम के राज्य द्वारा प्रबन्ध-ग्रहण का उपबंध किया गया है, तब भी स्वतः यह परिस्थिति इस प्रश्न का विनिश्चायक तत्त्व नहीं होगी कि क्या 1976 के संशोधन-अधिनियम का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों से कोई प्रत्यक्ष और युक्तियुक्त संबंध नहीं है। 1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा यथासंशोधित, 1910 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का प्रभाव यह सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए समाज के तात्त्विक संसाधनों के नियंत्रण और स्वामित्व का अंतरण है कि उनका इस प्रकार वितरण किया जाता है जिससे कि सामान्य हित की अधिकतम पूर्ति हो सके। वस्तुतः उक्त उपबंधों द्वारा इस पद के व्यापक अर्थ में 'राष्ट्रीयकरण' लाया गया है। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा इस सुधार के आर्थिक भार को सीमित करने की ईप्सा की गई है। 'राष्ट्रीयकरण' पद से सरकार द्वारा प्राइवेट स्वामित्व वाले कारबार का अर्जन और नियंत्रण अभिप्रेत है। समाज के तात्त्विक संसाधनों के राष्ट्रीयकरण का विचार ऐसी रीति में समाज में उक्त संसाधन के वितरण के विचार से विलग नहीं किया जा सकता है, जिससे सामान्य हित की पूर्ति होती है। अब सजातीय और पारिणामिक प्रश्न यह है कि क्या संशोधन-अधिनियम, 1976 के उपबंधों का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों से युक्तियुक्त और प्रत्यक्ष संबंध था। यह सच है कि अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण केवल ऐसे उपबंधों को ही प्राप्त है, जो अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों को प्रभावी बनाने के लिए आधारभूत और सारभूत रूप से आवश्यक हैं। उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में अपने तर्क को ध्यान में रखते हुए यह दृष्टिकोण अपनाया है कि मूल अधिनियम में प्रबंध-ग्रहण का उपबंध अर्जन करने की शक्ति की कोटि में आ सकता है, तथापि 1976 के संशोधन-अधिनियम के उद्देश्यों के बारे में, जिनके

द्वारा केवल कीमत कम करना ही ईप्सित था, यह नहीं कहा जा सकता है कि वे उस शक्ति के भाग हैं और इसलिए वे अनुच्छेद 39-ख के साथ कोई संबंध स्थापित करने में असमर्थ हैं। यह तर्क दोषपूर्ण है। 1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के अनुरूप लाए गए। इस आर्थिक सुधार के खर्च को वहन किए जाने योग्य बनाया गया है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसका अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के साथ कोई प्रत्यक्ष या युक्तियुक्त संबंध नहीं है। जब किसी विधायी अधिनियमिति को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि वह सरकार की न्यायिक शाखा—सांविधानिक आदेश—के अनुरूप नहीं है, तब यह कहा जाता है कि उसका केवल एक कर्त्तव्य है—संविधान के अनुच्छेद को, जिसका अवलंब लिया जाता है, उस कानून के साथ रखना, जिसे चुनौती दी जाती है और यह विनिश्चय करना कि क्या पश्चात्‌कथित पूर्वकथित के अनुरूप है। (पैरा 18)

सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए समाज का आर्थिक भार समतावादी और उदारवादी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को संविधान की भावना के अनुरूप लाने के लिए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन में अंतर्वलित कार्यकलाप का अभिन्न अंग है। आर्थिक व्यय के रूप में आर्थिक परिवर्तन का खर्च अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के साथ एकीकृत तत्व है। न्यायालय को, आर्थिक नीति के विषयों में, समय और परिस्थितियों द्वारा यथाप्रतिबद्ध, विधायी निर्णय का सम्मान करना चाहिए। सामाजिक परिवर्तन में निहित बुद्धिमत्ता, कुछ मात्रा में, समय की अनुभूत आवश्यकताओं पर निर्भर करती है। (पैरा 19)

तदनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1976 के संशोधन-अधिनियम के उपबंधों का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्य से प्रत्यक्ष और सारभूत संबंध है और इसलिए वे अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के लिए हकदार हैं। अतः अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उल्लंघन के आधार पर उन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती है। (पैरा 20)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1986] ए० आई० आर० 1986 एस० सी० 1466 (1475):
महाराष्ट्र राज्य बनाम बंसतीबाई. 11

निर्दिष्ट निर्णय

[1982] ए० आई० आर० 1982 कलकत्ता 74 :
बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम पटना इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई कंपनी लिमिटेड और एक अन्य; 13

[1969] [1969] 1 एस० सी० आर० 589 पृष्ठ 592-93 :
गुजरात विद्युत् बोर्ड बनाम गिरधारीलाल मोतीलाल और एक अन्य; 15, 17

[1962] [1962] सप्ली 3 एस० सी० आर० 496 :
फाजिल्का इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लि० बनाम आयकर आयुक्त, दिल्ली. 12, 17

सिविल अपीली अधिकारिता : 1985 की सिविल अपील संख्या 4113.

1977 की प्रकीर्ण याचिका सं० 1115 में मुंबई उच्च न्यायालय के तारीख 20 जुलाई, 1984 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री टी० आर० अंध्यरुजिन, एस० बी० भस्मे, आर० ए० दादा, बी० एस० देसाई, ए० के० सेन, एम० एल० धामुक, एम० ए० फिरोज, ए० एस० भस्मे, ए० एम० खानविलकर, हरीश साल्वे, आर० एफ० नारीमन, जे० बी० दादाचारी, (श्रीमती) ए० के वर्मा, जोंएल पेरेस, बी० एच० वाणी, डी० एन० मिश्र, अरुण मदन और (कुमारी) ए० सुभाषिणी

न्यायालय का निर्णय न्या० एम० एन० वेंकटाचलय्या ने दिया।

न्या० वेंकटाचलय्या – ये अपीलें (प्रथम दो महाराष्ट्र राज्य विद्युत् बोर्ड द्वारा प्रमाणपत्र द्वारा और महाराष्ट्र राज्य द्वारा विशेष अनुमति द्वारा) 1975 की प्रकीर्ण याचिका सं० 1115 में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाहियों में मुंबई उच्च न्यायालय के तारीख 20 जुलाई, 1984 के निर्णय से उद्भूत हुई हैं और उसी के विरुद्ध फाइल की गई हैं। उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका प्रत्यर्थी—ठाणे इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड (संक्षेप में जिसे कंपनी कहा गया है) द्वारा फाइल की गई, जिसमें भारतीय विद्युत् (महाराष्ट्र संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का महाराष्ट्र अधिनियम सं० 44) (संक्षेप में 1976 का संशोधन अधिनियम) की धारा 4, 5 और 6 तथा भारतीय विद्युत् (महाराष्ट्र संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1974 की धारा 2 की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई है। प्रत्यर्थी-कंपनी ने 1984 की अपनी सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 40944 (1985 की सी० ए० संख्या 243) द्वारा कतिपय अनुतोषों की ईप्सा की, जो उच्च न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिए गए थे। उक्त सिविल प्रकीर्ण याचिका विशेष अनुमति दिए जाने के लिए याचिका मानी गई और तारीख 11 जनवरी, 1985 को विशेष अनुमति प्रदान की गई। इस प्रकार 1985 की सी० ए० संख्या 243 दर्ज की गई।

2. उच्च न्यायालय के समक्ष संविवाद मोटे रूप में इस प्रकार उपदर्शित किया जा सकता है—

उक्त कंपनी, स्थानांतरण द्वारा अनुज्ञप्ति के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में बिजली के प्रदाय और वितरण के लिए भारतीय विद्युत् अधिनियम, 1910 के अधीन तत्कालीन मुंबई सरकार द्वारा तारीख 14 सितंबर, 1927 को अनुदत्त ठाणे विद्युत् अनुज्ञप्ति, 1927 के फायदे और विशेषाधिकारों के लिए हकदार हो गई। उक्त मंजूरी मूलत: 'मैसर्स पी० पटेल एंड कंपनी' के नाम और अभिनाम के अधीन भागीदारों की एक फर्म के पक्ष में थी। तारीख 16 फरवरी, 1928 को प्रत्यर्थी-कंपनी उक्त फर्म-मैसर्स पी० पटेल एंड कंपनी से अनुज्ञप्ति लेने के उद्देश्य से प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में बनाई गई। सरकार ने,

तारीख 11 जून, 1928 के अपने आदेश द्वारा उक्त प्राइवेट लिमिटेड कंपनी को अनुज्ञप्ति के अंतरण के लिए सम्मति दे दी। तारीख 15 जनवरी, 1965 को उक्त प्राइवेट लिमिटेड कंपनी पब्लिक लिमिटेड कंपनी हो गई। अनुज्ञप्ति समय के व्यतीत होने के कारण तारीख 21 सितंबर, 1977 को समाप्त होनी थी। अनुज्ञप्ति के खंड 11 में, जैसा कि प्रायः ऐसी मंजूरियों में होता है, अनुज्ञप्ति की अवधि की समाप्ति पर उपक्रम को खरीदने के लिए सरकार को विकल्प की परिकल्पना की गई थी। संशोधन-अधिनियम, 1976 के लिए विधेयक तारीख 13 जुलाई, 1976 को विधानमंडल में पुरःस्थापित किया गया। राज्य विद्युत् बोर्ड ने तारीख 26 अगस्त, 1976 की सूचना द्वारा, जिसकी कंपनी पर तामील की गई, अनुज्ञप्ति पर की अवधि में समाप्ति उपक्रम को खरीदने के अपने विकल्प का प्रयोग किया और तदनुसार कंपनी से 21 और 22 सितंबर, 1977 की मध्य रात्रि को अपीलार्थी बोर्ड को उक्त उपक्रम बेचने और परिदत्त करने की अपेक्षा की। विद्युत् अधिनियम, 1910 के उपबंधों द्वारा, जैसे कि वे विकल्प का प्रयोग किए जाने के दिन थे, कंपनी उपक्रम के बाजार मूल्य का संदाय किए जाने के लिए हकदार हो गई।

तथापि, तारीख 13 जुलाई, 1976 को पुरःस्थापित विधेयक के अनुसरण में संशोधन-अधिनियम, 1976 तारीख 20 सितंबर, 1976 को विधि बन गया। उक्त अधिनियम को तारीख 2 सितंबर, 1976 को राष्ट्रपति की अनुमति मिली और वह, तारीख 26 अगस्त, 1976 की सूचना में अंतर्विष्ट क्रय करने के विकल्प से एक मास के भीतर, तारीख 20 सितंबर, 1976 से प्रवृत्त हो गया। 1976 के इस संशोधन अधिनियम द्वारा, 1910 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों में 'बाजार-मूल्य' का सिद्धांत 'रकम' की संकल्पना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जो उद्गृहीत किए जाने वाले उपक्रम की आस्तियां के अवक्षीण बही मूल्य (बुक-वेल्यू) के बराबर रकम के रूप में विधायी रूप से नियत की गई थी। संशोधित उपबंध ऐसे मामलों में लागू होने थे, जिनमें, जैसी कि स्थिति यहां है, संशोधन से पूर्व सूचनाएं जारी की जा चुकी थीं। कंपनी और उसके अंशधारकों ने, संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1) (च) और (छ) तथा 31 का उल्लंघन करने के आधार पर 1976 के संशोधन-अधिनियम को चुनौती दी। अपीलार्थियों—महाराष्ट्र राज्य और राज्य विद्युत् बोर्ड—ने 1976 के संशोधन-अधिनियम के लिए अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का दावा किया और अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उल्लंघन के आधार पर आपत्ति से पारिणामिक उन्मुक्ति का भी दावा किया।

3. उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों के इस दावे को अस्वीकार कर दिया कि आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त था, और उसने 1974 के अधिनियम की धारा 2 और 1976 के संशोधन-अधिनियम की धारा 5 और 6 पर अधिरोपित सांविधानिक दौर्बल्य के संबंध में कंपनी की दलील भी स्वीकार नहीं की किंतु उच्च न्यायालय ने संशोधन-अधिनियम की धारा 4 के बारे में यह घोषित किया कि उससे अनुच्छेद 19(1) (च) और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता था।

उच्च न्यायालय ने कंपनी की इस दलील को अस्वीकार कर दिया कि विधि के अधीन, जैसी कि वह उस समय थी, बाजार-मूल्य का संदाय किए जाने का कंपनी का अधिकार, क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करने वाली सूचना की तामील पर, अनुयोज्य दावे या वाद-वस्तु के रूप में स्पष्ट हुआ था, और जिसके अर्जित किए जाने की ईप्सा की गई थी, वह स्वयं उपक्रम

नहीं था बल्कि वाद-वस्तु ही थी। राज्य और विद्युत् बोर्ड ने उच्च न्यायालय के इस मत की शुद्धता को चुनौती दी है कि 1976 के संशोधन-अधिनियम की धारा 4 अविधिमान्य थी, जबकि कंपनी ने, 1885 की अपनी अपील सं० सी ए 243 में, उसके विरुद्ध अभिनिर्धारित मुद्दों पर निर्णय की शुद्धता को चुनौती दी।

4. कंपनी ने 1 सितंबर, 1977 को उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की। तारीख 21 सितंबर, 1977 को उच्च न्यायालय ने अपने अंतर्वर्ती आदेश द्वारा, बोर्ड द्वारा कंपनी को चार करोड़ पांच लाख रुपए का संदाय किए जाने की शर्त के अधीन रहते हुए, उपक्रम का प्रबंध-ग्रहण अनुज्ञात किया। बोर्ड ने तारीख 21/22 सितंबर, 1977 को संदाय किया और कब्जा लिया। तारीख 11 जनवरी, 1985 को राज्य और बोर्ड की अपीलों में इस न्यायालय ने कंपनी को एक करोड़ दस लाख रुपए के संदाय का आदेश किया।

5. इस स्थल पर महाराष्ट्र राज्य को 1910 के अधिनियम के लागू होने के संबंध में उक्त अधिनियम के उपबंधों से संबंधित तीन विधायी घटनाओं का उल्लेख करना उचित होगा—

तारीख 27 अगस्त, 1974 को महाराष्ट्र के राज्यपाल ने 1974 का अध्यादेश सं० 18 प्रख्यापित किया, जो बाद में भारतीय विद्युत् (महाराष्ट्र संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम (1974 का अधिनियम सं० 63) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। उक्त अधिनियम द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, 1910 के अधिनियम की धारा 3 में धारा (1-कक) अंतःस्थापित की गई, जो सदा अंतःस्थापित की गई समझी गई और जो इस आशय की थी कि अनुदत्त अनुज्ञप्ति राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी और, जैसा कि धारा 3(2)(गग) में बताया गया है, अनुज्ञप्ति ऐसी तारीख को आरंभ होगी, जिसको ऐसी अनुज्ञप्ति राजपत्र में प्रकाशित की गई थी। 1974 के संशोधन अधिनियम द्वारा 1910 के अधिनियम की उपधारा (6) को भी प्रतिस्थापित किया गया और धारा 6 की उपधारा (7) को भी संशोधित किया गया। प्रतिस्थापित उपधारा (6) में यह उपबंध किया गया कि जहां क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करते हुए सूचना की तामील की गई थी, वहां अनुज्ञप्तिधारी अवधारण और क्रय-कीमत तथा ब्याज का संदाय होने तक उपक्रम का परिदान करेगा। स्पष्टतः, ऐसा कीमत की निविदा के बिना प्रबंध-ग्रहण की वैधता से संबंधित कतिपय न्यायिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए आशयित था। संशोधित धारा 7 द्वारा हित को उपक्रम के परिदान के समय प्रचलित भारतीय रिजर्व बैंक की दर पर निर्बंधित किया गया, उपक्रम के परिदान की तारीख से क्रय-कीमत की संदाय की तारीख तक 1 प्रतिशत ब्याज भी सम्मिलित था।

वस्तुतः, 1976 का संशोधन-अधिनियम बहुत दूरगामी था और उसके द्वारा प्रबंध-ग्रहण के लिए संदाय के आधार पर कतिपय आधारभूत परिवर्तन लाए गए। 'बाजार-मूल्य' के विचार को छुट्टी दे दी गई और उसे 'रकम' की संकल्पना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जो 'अवक्षीण बही-मूल्य' तक सीमित रहनी थी। संशोधन-विधेयक से संलग्न उद्देश्य और कारणों के कथन में उसके मुख्य उद्देश्य उपवर्णित किए गए हैं—

> "भारतीय विद्युत् अधिनियम, 1910 की धारा 7-क में क्रय कीमत के अवधारण का उपबंध किया गया है, जहां अनुज्ञप्तिधारी के किसी उपक्रम को धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन बेचा जाता है या अधिनियम की धारा 6 के अधीन खरीदा

जाता है। ऐसी कीमत को अवधारित करने का आधार क्रय के समय या उपक्रम के परिदान के समय उपक्रम का बाजार-मूल्य है। बढ़ती हुई कीमतों की वर्तमान प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, उपक्रम का बाजार मूल्य मूल क्रय-कीमत की तुलना में कहीं अधिक होगा। ऐसी स्थिति में, क्रेता से अधिनियम के विद्यमान उपबंधों के अनुसार क्रय कीमत के संदाय के लिए या प्रतिकर के संदाय के लिए बहुत भारी व्यय उपगत करने की अपेक्षा की जाएगी और उससे क्रेता भारी वित्तीय अभिबंधनों में अंतर्वलित हो (फंस) जाएगा। अतः उपभोक्ता और सामाजिक न्याय के हित में अधिनियम में समुचित रूप से संशोधन करना आवश्यक है, जिससे कि नकदी में या वार्षिक किस्तों में उपक्रम के अवक्षीण बही-मूल्य के बराबर रकम के संदाय का उपबंध किया जा सके।

उक्त विधेयक इन्हीं उद्देश्यों के प्राप्त करने के लिए आशयित है।"

1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा, 1910 के अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) प्रतिस्थापित की गई। यथा प्रतिस्थापित उपधारा (2) इस प्रकार है—

*"(2) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई उपक्रम बेचा जाता है, वहां क्रेता उपक्रम के लिए धारा 7-क की उपधारा (1) और (2) के उपबंधों के अनुसार अवधारित कीमत का अनुज्ञप्तिधारी को संदाय करेगा।"

1910 के अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (3) और परंतुक में तथा धारा 6 में 'बाजार-मूल्य का संदाय' शब्द 'उपक्रम के लिए रकम का संदाय' शब्दों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। धारा 6 की उपधारा (7) प्रतिस्थापित की गई। प्रतिस्थापित उपधारा में यह उपबंध किया गया—

**"(7) जहां इस धारा के अधीन कोई उपक्रम खरीदा जाता है, वहां क्रेता अनुज्ञप्तिधारी को धारा 7 क के उपबंधों के अनुसार अवधारित रकम और उपक्रम के परिदान के समय विद्यमान भारतीय रिजर्व बैंक दर पर ब्याज तथा उपक्रम के परिदान

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(2) Where an undertaking is sold under sub-section (1), the purchaser shall pay to the licensee for the undertaking an amount determined in accordance with ihe provisions of sub-sections (1) aud (2) of section 7A;"

**"(7) Where an undertaking is purchased under this Section, the purchaser shall pay to the licensee the amount determined in accordance with the provisions of Section 7A and interest at the Reserve Bank of India rate ruling at the time of delivery of the undertaking plus one per centum on the amount payable for the

की तारीख से ऐसी रकम के संदाय तक उपक्रम के लिए संदेय रकम पर एक प्रतिशत का संदाय करेगा।"

अधिनियम की नई धारा 7-क की उपधारा (1) और (2) में यह कहा गया है—

*"7-क (1). जहां अनुज्ञप्तिधारी का उपक्रम धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन बेचा जाता है या धारा 6 के अधीन खरीदा जाता है, वहां उपक्रम के लिए संदेय रकम उपक्रम के परिदान के समय उपक्रम का बही-मूल्य होगा।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए उपक्रम का बही मूल्य धारा 11 के उपबंधों के अनुसार, अनुज्ञप्तिधारी द्वारा दिए गए लेखाओं में यथादर्शित अनुज्ञप्तिधारी की सभी भूमियों, भवनों, संकर्मों, सामग्रियों और संयंत्र का अवक्षीण बही-मूल्य माना जाएगा, जो निम्नलिखित से भिन्न उपक्रम के प्रयोजन के लिए उसके उपयुक्त हों और उसके लिए उपयोग में लाया गया हो—

(i) अनुज्ञप्तिधारी द्वारा इस रूप में घोषित उत्पादन केंद्र कि वह क्रय के प्रयोजन के लिए उपक्रम का भाग नहीं होगा; और

(ii) सर्विस लाइनें या अन्य पूंजी संकर्म या उनका कोई भाग, जिनका उपभोक्ताओं के खर्च पर सन्निर्माण किया गया है— किंतु अनिवार्य क्रय या

---

undertaking for the period from the date of delivery of the undertaking to the date of payment of such amount."

*"7-A (1). Where an undertaking of a licensee is sold under sub-section (1) of section 5 or purchased under section 6, the amount payable for the undertaking shall be the book-value of the undertaking at the time of delivery of the undertaking.

(2) The book-value of an undertaking for the purposes of sub-section (1) shall be deemed to be the depreciated book-value as shown in the accounts rendered by the licensee in accordance with the provisions of section 11 of all lands, buildings, works, materials and plant of the licensee, suitable to, and used for him, for the purpose of the undertaking other than—

(i) a generating station declared by the licensee not to form part of the undertaking for the purpose of purchase; and

(ii) the service lines or other captital works or any part there of, which have been constructed at the expense of the consumers,—but without any addition in respect of compulsory purchase or of goodwill or of any profits which

गुडविल वाले किन्हीं फायदों की बाबत या ऐसी किसी अन्य विचारणा की बाबत किसी परिवर्धन के बिना, जो उपक्रम से किए जाएं या किए गए हों।"

नई धारा 7-क की उपधारा (3) में, किसी अतिरिक्त राशि के संदाय के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि, अनुज्ञप्ति, लिखत, आदेश या करार में अंतर्विष्ट किसी अनुबंध को अतिष्ठित करते हुए, नई धारा 7-क की उपधारा (1) और (2) के अधीन यथाअवधारित बही-मूल्य के दस प्रतिशत के तोषण (सोलेशियम) का संदाय परिकल्पित किया गया है, चाहे उसे किसी नाम से पुकारा जाए।

इसी प्रकार नई धारा 7-क की उपधारा (4) द्वारा नई धारा 7-क के उपबंधों को अध्यारोही प्रभाव देने की ईप्सा की गई है और यह उपबंध किया गया है कि इस अधिनियम या तदधीन बनाए गए किसी नियम या किसी अनुज्ञप्ति के अन्य उपबंधों सहित, तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियम का कोई भी उपबंध प्रभावी नहीं होगा, जहां तक वह नई धारा 7-क से असंगत है। नई धारा 7-क (5) द्वारा यथासंशोधित धारा 6 (7) में नियत ब्याज की दर सहित एकमुश्त या किस्तों में रकम के संदाय का उपबंध किया गया है।

संशोधन-अधिनियम, 1976 की धारा 5 में यह उपबंध किया है —

*"इस अधिनियम द्वारा यथासंशोधित मूल अधिनियम की धारा 5, 6 और 7-क के उपबंध, उनके उपक्रमों की बाबत सभी अनुज्ञप्तिधारियों के संबंध में प्रभावी होंगे, जिनमें ऐसा अनुज्ञप्तिधारी भी सम्मिलित है, जिसे उपक्रम को बेचने की उससे अपेक्षा करने वाली सूचना धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन जारी की गई है या जिस पर उपक्रम को खरीदने के विकल्प का प्रयोग करते हुए सूचना, भारतीय विद्युत् (महाराष्ट्र संशोधन) अधिनियम, 1976 के आरंभ से पूर्व, मूल अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन तामील की गई है, और जिसके उपक्रम की बाबत क्रय-कीमत ऐसे प्रारंभ से पूर्व अवधारित नहीं की गई थी।"

[जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया]

---

may be or might have been made from the undertaking or of any similar consideration."

*"The provisions of sections 5, 6 and 7-A of the Principal Act as amended by this Act, shall have effect in relation to all the licensees in respect of their undertakings, including any licensee on whom a noticc requiring him to sell the undertaking has been issued under sub-section (1) of section 5, or on whom a notice exercising the option of purchasing the undertaking has been served under sub-section (1) of section 6 of the Principal Act before the commencement of the Indian Electricity (Maharashtra Amendment) Act, 1976, and the purchase price in respect of whose undertaking was not determined before such commencement." (Emphasis Supplied)

एक अन्य विधायी अभ्युपाय संशोधन-अधिनियम, 1981 था, जो उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान किया गया था। उक्त संशोधन में यह उपबंध किया गया कि जहां रकम किस्तों में संदेय थी, ब्याज उपक्रम के परिदान की तारीख से अंतिम किस्त की संदाय की तारीख तक संदेय होगा।

6. 1976 के संशोधन अधिनियम का प्रभाव सारत: यह था कि 'बाजार-मूल्य' की संकल्पना 'रकम' की संकल्पना द्वारा प्रतिस्थापित की गई, जो उसके परिदान के समय उपक्रम का बही-मूल्य थी। 'बही-मूल्य' 1910 के अधिनियम की धारा 11 के अनुसार अनुज्ञप्तिधारी द्वारा दिए गए लेखाओं में यथादर्शित, सभी भूमियों, भवनों, संकर्मों, सामग्रियों और संयंत्रों आदि का 'अवक्षीण बही-मूल्य' माना गया। अनुज्ञप्तिधारी को ऐसे बही-मूल्य के दस प्रतिशत का तोषण (सोलेशियम) दिया गया। 1976 के संशोधन-अधिनियम के उपबंध सभी अनुज्ञप्तिधारियों को लागू किए गए, जिनमें ऐसा अनुज्ञप्तिधारी भी सम्मिलित था, जिस पर उपक्रम को बेचने की उससे अपेक्षा करने वाली सूचना की, 1976 के संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने से पूर्व, तामील कर दी गई थी किंतु अधिनियम के संशोधन से पूर्व क्रय-कीमत अवधारित नहीं की गई थी। 1976 के संशोधन अधिनियम का परिणाम यह था कि कंपनी के, उसके 'उपक्रम' के लिए संदाय हेतु हक को भी, जिसकी बाबत बोर्ड के क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करने वाली सूचना 1976 के संशोधन के प्रवृत्त होने की तारीख से पूर्व अर्थात् 26 अगस्त, 1976 को तामील की गई थी, 1976 के संशोधन अधिनियम के उपबंध लागू हुए। उपबंधों के आधार पर, जैसे कि वे उस समय थे, प्रत्यर्थी-कंपनी, इन उपबंधों के अधीन यथा-अवधारणीय 'बाजार-मूल्य' के संदाय के लिए हकदार थी, जबकि प्रत्यर्थी-कंपनी 1976 के संशोधन अधिनियम के आधार पर अब रकम के 'संदाय' के लिए हकदार हो गई, जो बाजार-मूल्य के बजाय सभी भूमियों, भवनों और संकर्मों आदि के 'अवक्षीण बही-मूल्य' के बराबर थी और उसे निरूपित कर दी थी।

7. जैसा कि पहले बताया जा चुका है, उच्च न्यायालय के समक्ष मुख्य विवाद यह था कि क्या संशोधन-अधिनियम, 1976 के उपबंधों से, जिनके द्वारा कंपनी के उपक्रम का प्रबंध-ग्रहण करने के लिए प्रतिफल के परिमाण में कठोरतापूर्वक कांट-छांट की गई थी, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (1) (च) और (छ) तथा 31 का उल्लंघन होता है, जैसी कि कंपनी द्वारा दलील दी गई है, या 1976 के संशोधन-अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 31-ग के उपबंध लागू होते थे और उसे उनका संरक्षण प्राप्त था, जिससे कि विधि आभारभूत अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दिए जाने से उन्मुक्त हो गई है। पक्षकारों की दलीलों पर अनुच्छेद 19 (1) (च) और 31 के उपबंधों के प्रकाश में विचार किया जाना आवश्यक होगा, जैसे कि वे सुसंगत समय पर थे। बाद में अनुच्छेद 19(1) (च) और 31 का विलोप कर दिया किंतु उससे सांविधानिक स्थिति प्रभावित नहीं होती है, जिसके प्रति निर्देश से वर्तमान मामलों का विनिश्चय अपेक्षित होगा।

उस प्रकार की विधि, जिससे हमारा संबंध है, और अनुच्छेद 31-ग के बीच अंतर-संबंध से संबंधित दलीलों के कुछ पहलुओं पर 1972 की रिट याचिका सं० 457 और 458 में असम विधान से उदभूत होने वाले समान मामलों में हमारे निर्णयों में, जो आज अलग-अलग दिए गए, विचार किया गया है।

उच्च न्यायालय को यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया गया कि स्वयं 1976 के संशोधन-अधिनियम में विधायी घोषणा का अभाव राज्य की इस दलील की स्वीकार्यता के विरुद्ध विनिश्चायक तथ्य था कि विधि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के उद्देश्यों को प्रभावी बनाने के लिए थी। इस संबंध में उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

> "इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने (जिसमें हममें से एक बंधु न्या० रेगे भी थे) (1983 की रिट याचिका सं० 2401—द एलफिंस्टन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ वाले मामले में) यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी अधिनियमिति को अनुच्छेद 31 (ग) के संरक्षण के अंतर्गत लाने के लिए, जिससे कि अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधार पर उसे चुनौती वर्जित की जा सके, यह आवश्यक था कि अधिनियमिति में ऐसी घोषणा अंतर्विष्ट होनी चाहिए, जिससे संसद् या राज्य विधानमंडल का अनुच्छेद 39 (ख) या (ग) में नीति के निदेशक तत्वों को उक्त अधिनियमिति द्वारा प्रभावी बनाने का आशय प्रकट हो। ऐसा अधिनियमिति में अनुच्छेद 39 (ख) या (ग) के प्रति विनिर्दिष्ट निर्देश द्वारा अथवा उसमें अनुच्छेद 39 (ख) या (ग) के शब्द सम्मिलित करके किया जा सकता था। 1976 के संशोधन-अधिनियम में ऐसी कोई घोषणा अंतर्विष्ट नहीं है, जिससे राज्य विधानमंडल का अनुच्छेद 39 (ख) या (ग) में अंतर्विष्ट नीति के निदेशक तत्वों को तद्द्वारा प्रभावी बनाने का आशय प्रकट हो। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थियों के काउंसेल ने हमारे समक्ष अनुच्छेद 31 (ग) पर आधारित तर्क पर जोर नहीं दिया है बल्कि उसे उच्चतम न्यायालय के लिए आरक्षित रखा है, यदि आवश्यक हो।"

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

इस आधार पर उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया कि क्या 1976 का संशोधन-अधिनियम वस्तुतः अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में निहित नीति को प्रभावी बनाने के लिए था। उक्त विधान को अनुच्छेद 31 (ग) का संरक्षण उपलब्ध नहीं है—ऐसा मानने के पश्चात् उच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर हुआ कि क्या आक्षेपित विधि के उपबंधों से, जिनमें वे उपबंध भी सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा सरकार को किस्तों द्वारा संदाय मुलतवी करने की शक्ति प्रदत्त की गई है, और वे उपबंध भी सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा ब्याज की दर आदि सीमित की गई है, अनुच्छेद 14 और 19 के अधीन मूल अधिकारों का उल्लंघन होता था। अपीलार्थियों की यह दलील अस्वीकार करते हुए कि न्यायालय के आदेशाधीन 4,05,00,000 रुपए के संदाय के साथ, रकम का एकमुश्त या किस्तों में संदाय करने का विनिश्चय करने के लिए सरकार को शक्ति प्रदत्त करने वाले उपबंधों के मनमानेपन के बारे में कंपनी की शिकायत शुद्धतः सैद्धांतिक रह गई थी, उच्च न्यायालय ने यह कहा —

> "विद्वान् न्यायाधीश के आदेश से यह बिलकुल स्पष्ट है कि 4,05,00,000 रुपए का संदाय बोर्ड द्वारा कंपनी को इन आदेशों के अनुसरण में और कंपनी के उपक्रम का कब्जा लेने के लिए अनुज्ञात किए जाने की शर्त के रूप में किया गया था।

अतः कंपनी यह दलील देने के लिए हकदार है कि क्रय-कीमत के संदाय में विलंब करने वाले और उसका संदाय किस्तों द्वारा किए जाने को संभव बनाने वाले उपबंध अयुक्तियुक्त और असंवैधानिक हैं।"

8. उच्च न्यायालय की राय में, राज्य विद्युत् बोर्ड, अपनी घोषित नीति के विषय के रूप में, प्राइवेट विद्युत उपक्रम खरीद रहा था, जैसे ही और जब उनकी अनुज्ञप्तियां समाप्त हुई और 1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित संदाय के परिणाम में कटौती से अनुच्छेद 19 (1) (च) का उल्लंघन होता था। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

"......विद्युत् उपक्रम अनिवार्यत: 1976 तक उनके बाजार-मूल्य के संदाय पर खरीदे गए, जब 1976 का संशोधन-अधिनियम प्रवृत्त हुआ। प्रत्यर्थियों की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र में इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि वह कौन-सी चीज थी, जिसने उस समय लोकहित में क्रय-कीमत का बाजार-मूल्य से घटाकर अवक्षीण बही-मूल्य के रूप में किया जाना आवश्यक बना दिया। शपथ-पत्रों में इस आशय का कोई कथन नहीं किया है कि बाजार-मूल्य के आधार पर बोर्ड अब अनिवार्य क्रय नहीं कर सकता था.........।"

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

"....बाजार-मूल्य का संदाय करने की बाध्यता ने राज्य को यह नीति अपनाने से भयोपरत नहीं किया। प्रत्यर्थियों की ओर से फाइल किए गए शपथपत्रों में यह प्रकथन नहीं किया गया है कि भूतकाल में विद्युत्-टैरिफ में वृद्धि की जानी थी; उनमें केवल यही कहा गया है कि अनिवार्य क्रयों पर उपगत व्यय को गणना में लिया जाना था........."

"........इन सब बातों को देखते हुए, 1976 के संशोधन-अधिनियम के उद्देश्य और कारण यही हो सकते थे कि अनिवार्य क्रय पर बोर्ड के दायित्व को कम किया जाए। एकमात्र प्रयोजन के रूप में राज्य के दायित्व को कम करने या राज्य की निधियों में वृद्धि करने के लिए अधिनियमित विधान से अनुच्छेद 19 (1) (च) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार का उल्लंघन होता है। हम उन मामलों को पहले ही प्रोद्धृत कर चुके हैं, जिनमें यह अभिनिर्धारित किया है।"

यहां यह बात याद रखी जानी चाहिए कि कारणों और उद्देश्यों के कथन और विधेयक से उपाबद्ध वित्तीय कथन में उन विचारणाओं को उपवर्णित किया गया है, जिन्होंने राज्य को प्रतिकर में कटौती करने के लिए विवश किया था। किंतु उच्च न्यायालय के अनुसार, शपथपत्रों में उन पर जोर का अभाव तात्त्विक है।

9. उच्च न्यायालय ने सारत: यह भी अभिनिर्धारित किया कि राज्य, विधान द्वारा भी, सम्मतिजनित संव्यवहार के अधीन क्रय-कीमत का संदाय करने के अपने दायित्व को एकपक्षीय रूप से कम नहीं कर सकता है और ऐसे प्रयास से अनुच्छेद 19 (1) (च) का

उल्लंघन होगा। हम इस स्थल पर उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क उपवर्णित करना उचित समझते हैं, जिसमें उक्त आधार पर निकाला गया निष्कर्ष असफल प्रतीत होता है—

> "........यद्यपि क्रय अनिवार्य है, यद्यपि संविदा के निबंधन विधान द्वारा संशोधनीय हैं, यद्यपि बिजली के आम (अधिकार) और उसके प्रति लाभ विधान द्वारा नियंत्रित हैं और यद्यपि क्रय तात्विक संसाधन के संबंध में है, जिस पर नियंत्रण निदेशक तत्त्व है, तथापि संविदा के अधीन क्रेता के रूप में राज्य को क्रय-कीमत के संबंध में अपने दायित्व को काफी कम करने के लिए एकपक्षीय रूप से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता है। ऐसी कटौती युक्तियुक्त नहीं है, लोकहित में नहीं है और उससे अनुच्छेद 19 (1) (च) के अधीन मूल अधिकार का उल्लंघन होता है।"
>
> (जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

कंपनी की इस दलील को स्वीकार करते हुए कि 1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा संदाय के परिमाण में लाई गई कटौती से अनुच्छेद 19(1) (छ) का उल्लंघन होता है, उच्च न्यायालय ने यह कहा —

> "क्रय-कीमत में कटौती का, जबकि अनुज्ञप्ति प्रवृत्त थी, अनुज्ञप्तिधारी के विद्युत् प्रदाय के कारबार को चलाने के अधिकार पर प्रत्यक्ष और नजदीकी प्रभाव पड़ना ही है। उसके उपक्रम के अनिवार्य क्रय पर, अनुज्ञप्तिधारी अन्य कारबार करेगा या करना चाहेगा। उसकी पूंजी में इतनी अधिक कमी से, जो उसके उपक्रम की क्रय-कीमत बाजार-मूल्य से घटाकर अवक्षीण बही-मूल्य के रूप में किए जाने के कारण हुई, उसके ऐसा करने में बाधा ही पड़ेगी। अतः अनुच्छेद 19(1) (छ) की गारंटी का भी उल्लंघन होगा।"

इसके अतिरिक्त किस्तें नियत करने के लिए सरकार को शक्ति का प्रदत्त किया जाना अत्यधिक अयुक्तियुक्त और मनमाना माना गया और उसके बारे में यह भी माना गया कि उससे अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) तथा अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता था। उच्च न्यायालय के अनुसार, एक प्रतिशत सहित, रिजर्व बैंक की दर पर ब्याज के संदाय के उपबंध से संशोधन-अधिनियम, 1976 के उपबंध और अधिक अयुक्तियुक्त हो गए और 'ब्याज की उच्चतर वाणिज्यिक दर के लगभग (यदि बराबर नहीं) दर अधिक उचित रही होती।'

10. तथापि, उच्च न्यायालय ने कंपनी की यह दलील अस्वीकार कर दी कि बाजार-मूल्य के संदाय के लिए उसका अधिकार उस पर उस सूचना की तामील किए जाने पर स्पष्ट हो गया, जिसके द्वारा बोर्ड के उपक्रम को खरीदने के विकल्प का प्रयोग किया गया था, और जिस चीज के अर्जित किए जाने की ईप्सा की गई थी, वह उपक्रम नहीं, बल्कि वाद-वस्तु थी। उच्च न्यायालय ने इस दलील को भी अस्वीकार कर दिया कि सर्विस-लाइनों को रकम की गणना से अपवर्जित करने के कारण विधि अमान्य थी। इन अस्वीकृतियों की शुद्धता को ही कंपनी की प्रति-अपील, अर्थात् 1985 की सिविल अपील सं० 243 में चुनौती दी गई है।

11. हमने महाराष्ट्र राज्य और राज्य विद्युत् बोर्ड के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अंध्यरूधूजिन तथा प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ए० के० सेन को सुन लिया है।

राज्य और विद्युत् बोर्ड की ओर से जो मुख्य दलील दी गई वह यह थी कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित विधि को अनुच्छेद 31 (ग) का संरक्षण न देना गलत था। यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने यह अनुध्यात करके गंभीर गलती की कि विधि में इस अभिव्यक्त विधायी घोषणा का अभाव कि विधि अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) में राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित की गई थी, अनुच्छेद 31 (ग) के लागू किए जाने के विरुद्ध स्वयं निश्चायक सबूत था। यह दलील दी गई की उस संबंध में अभिव्यक्त विधायी घोषणा के होने से विधान और अनुच्छेद 39 (ख) और (ग) के उद्देश्यों के बीच युक्तियुक्त और प्रत्यक्ष संबंध का साक्ष्य मात्र मिलता था किंतु ऐसी घोषणा किसी निश्चित बात का स्वयं निश्चायक सबूत नहीं थी और न्यायालय उक्त घोषणा के दिखावे से परे जाने के लिए भी हकदार था, जहां ऐसी घोषणा थी, और वह यह संवीक्षा कर सकता था कि क्या वस्तुतः कोई प्रत्यक्ष और युक्तियुक्त संबंध था और आवश्यक परिणाम के रूप में यह निष्कर्ष निकलता था कि ऐसी अभिव्यक्त घोषणा के न होने से राज्य अपेक्षित संबंध का अस्तित्व दर्शित करने से प्रवारित नहीं था। यह दलील दी गई कि आक्षेपित विधि अनुच्छेद 39 (ख) में अंतर्विष्ट नीति के निदेशक तत्त्वों को प्रभावी बनाने के लिए आशयित थी और वह अनुच्छेद 31 (ग) के संरक्षण के लिए हकदार थी।

प्रत्यर्थी (अनुज्ञप्तिधारी) कंपनी की ओर से श्री ए० के० सेन ने यह दलील दी कि अनुच्छेद 31 (ग) का अवलंब पूर्णतः मिथ्या धारणा पर आधारित था, क्योंकि उपक्रम को खरीदने का विकल्प पूर्णतः सम्मतिजनित संव्यवहार को प्रभावी बनाने के लिए था और विद्युत् अधिनियम, 1910 की स्कीम और, यथास्थिति, सरकार या बोर्ड को क्रय करने के विकल्प का प्रयोग करने के लिए समर्थ बनाते हुए अनुज्ञप्ति में प्रसंविदाएं उपक्रम का अनिवार्य अर्जन गठित नहीं करती थीं। यह दलील दी गई कि 1976 के संशोधन अधिनियम के आक्षेपित उपबंधों को, जिनका पारस्परिक सहमति के अधीन संदेय क्रय-कीमत को कम करने का प्रभाव था, अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्यों के साथ संबंध के आधार पर या उन्हें प्रभावी बनाने के लिए न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता था।

अतः इन अपीलों में विचारार्थ यह मुद्दा उद्भूत होता है कि क्या—

> "1976 के महाराष्ट्र अधिनियम सं० 44, जिसके द्वारा कानूनी रूप से उपक्रम के लिए क्रय-कीमत के अवधारण हेतु सिद्धांतों को उपांतरित किया गया है—1910 के अधिनियम की असंशोधित धारा 7-क में अंतर्विष्ट बाजार-मूल्य के सिद्धांत से 1976 के महाराष्ट्र अधिनियम सं० 44 द्वारा यथासंशोधित धारा 7-क के अधीन आस्तियों की अवक्षीण बही-मूल्य के बराबर रकम की संकल्पना के रूप में—संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्य के साथ युक्तियुक्त और प्रत्यक्ष संबंध सहित उपक्रम के अर्जन के लिए अधिनियमित विधि कहा जा सकता था और इसलिए उसे अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है।"

यदि राज्य और विद्युत् बोर्ड की दलील अभिभावी रहने दी जाती है और स्वीकार कर ली जाती है, तो अन्य सभी दलीलें, जो अनुच्छेद 14, 19 (1) (च) और (छ) तथा 31 के अभिकथित उल्लंघन पर आधारित, समाप्त हो जाती हैं। तथापि श्री अंध्यरुजिन ने यह दलील दी है कि यह प्रश्न कि क्या सरकार को ब्याज की दर पर कानूनी परिसीमाएं और किस्तें नियत कर कीमत के संदाय को मुल्तवी करने के लिए दी गई शक्ति से अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) का उल्लंघन होता है, वर्तमान मामले में पूर्णत: सैद्धांतिक हो गया है, क्योंकि वस्तुत: उच्च न्यायालय के आदेशों के अधीन चार करोड़ पांच लाख रुपए कब्जा लिए जाने से पूर्व ही संदत्त कर दिए गए थे और इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में 1 करोड़ 16 लाख रुपए की अतिरिक्त राशि संदत्त की गई। विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन भी किया कि अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के अतिरिक्त, 1976 का संशोधन- अधिनियम अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) के अधीन स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बंधन के रूप में न्यायोचित है।

आरंभ में ही इस मिथ्या धारणा को दूर किया जाना कदाचित् आवश्यक होगा कि विधान में अभिव्यक्त विधायी घोषणा अनुच्छेद 31-ग के लागू किए जाने के लिए पुरोभाव्य शर्त है। हम ससम्मान यह कहना चाहेंगे कि उच्च न्यायालय इस मुद्दे पर स्पष्टत: मिथ्या धारणा के अधीन रहा कि स्वयं विधि में अभिव्यक्त घोषणा आवश्यक थी। विधि और अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्यों के बीच संबंध विधानमंडल द्वारा ऐसी किसी घोषणा से स्वतंत्र रूप से दर्शित किया जा सकता था। अभिव्यक्त घोषणा के रूप में संबंध के साक्ष्य का अभाव स्वत: ऐसे संबंध के अभाव का साक्ष्य नहीं था। वस्तुत: **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **बसंतीबाई**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने, उच्च न्यायालय के इस मत की शुद्धता पर विचार करते हुए कि अनुच्छेद 31-ग स्वयं विधि में ऐसी घोषणा के अभाव में लागू नहीं होता था, यह मत व्यक्त किया—

> "..........सर्वप्रथम, अनुच्छेद 31-ग में यह नहीं कहा गया है कि अधिनियम में समुचित विधानमंडल द्वारा इस आशय की घोषणा होनी चाहिए कि वह अनुच्छेद 39 (ख) में अंतर्विष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधिनियमित किया जा रहा है। यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या उसे अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण प्राप्त है, न्यायालय को, उसके सभी भागों का अध्ययन करके विधान के स्वरूप के बारे में अपना समाधान कर लेना चाहिए। यह प्रश्न कि क्या अधिनियम अनुच्छेद 39 (ख) में अंतर्विष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आशयित है या नहीं, विधानमंडल द्वारा घोषणा पर निर्भर नहीं करता है बल्कि उसकी अंतर्वस्तुओं पर निर्भर करता है......।"

12. अब हम मुख्य दलील पर आते हैं। श्री सेन ने **फाजिलका इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, दिल्ली**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का ठीक ही अवलंब लिया है, जो इस प्रश्न के संदर्भ में एक आय-कर मामले में किया गया विनिश्चय था कि क्या 1910 के अधिनियम की सुसंगत धारा द्वारा यथासमर्थित, कंपनी के विद्युत् उपक्रम का विक्रय आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 10 (2) (7) के अर्थांतर्गत विक्रय माना जा सकता था और क्या भवन, मशीनरी, संयंत्र आदि की अवलिखित मूल्य से अधिक

---

[1] ए० आई० आर० 1986 एस० सी० 1466 (पृ० 1475).
[2] [1962] सप्ली० 3 एस० सी० आर० 496.

वसूली पर, जो मूल खर्च और अवलिखित मूल्य के बीच अंतर से—उक्त मामले में 77,700 रुपए की राशि—अधिक नहीं थी, कर अधिरोपित किया जाना था। यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या 1910 के अधिनियम के अधीन विकल्प के अनुसरण में विक्रय सम्मतिजनित विक्रय था, जिस दशा में धारा 10 (2) (vii) लागू होती थी या क्या वह 'अनिवार्य अर्जन' या 'अनिवार्य विक्रय' था। काउंसेल द्वारा दी गई दलील पर इस न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया—

> "......उन्होंने यह दलील दी है कि विद्युत अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों का समुचित अर्थान्वयन करने पर, वर्तमान मामले में तथाकथित विक्रय वस्तुतः संपत्ति का अनिवार्य अर्जन था, न कि विधिक रूप में समझा जाने वाला विक्रय।"

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है।)

(पृष्ठ 501)

यह प्रतिपादना स्वीकार नहीं की गई। इस न्यायालय ने यह कहा—

> "......यदि विद्युत् अधिनियम और तदधीन बनाए गए नियमों की संपूर्ण स्कीम ध्यान में रखी जाती है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 7 की उपधारा (1) द्वितीय परंतुक में 'अनिवार्य क्रय' पद का प्रयोग होते हुए भी, उस अर्थ में अनिवार्य क्रय या अनिवार्य अर्जन नहीं है, जिस अर्थ में उक्त पद सामान्यतया समझा जाता है......।"

(पृष्ठ 505)

उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों का सशक्त अवलंब लेते हुए, श्री सेन ने यह दलील दी कि अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्यों की पूर्ति करने की ईप्सा करते हुए अर्जन की सजातीय विवक्षा सहित अनिवार्य अर्जन की कोई भी प्रतिपादना वर्तमान मामले के लिए बिलकुल अजनबी (असंगत) है, जो सम्मतिजनित विक्रय का मामला था। श्री सेन ने अनुच्छेद 31 (2-क) के प्रति भी निर्देश किया, जैसा कि वह उस समय था और जिसमें यह उपबंध किया गया था—

> "(2-क) जहां किसी सम्मति के स्वामित्व के या कब्जा रखने के अधिकार का हस्तांतरण राज्य या ऐसे किसी निगम को, जो कि राज्य के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन है, करने के लिए उपबंध विधि नहीं करती है, वहां इस बात के होते हुए भी कि वह किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करती है, उसकी बाबत यह न समझा जाएगा कि वह संपत्ति के अनिवार्य अर्जन या अधिग्रहण के लिए उपबंध करती है।"

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

यह दलील दी गई कि जहां स्वामित्व का अंतरण स्वयं विधि के प्रवर्तन द्वारा नहीं किया जाता है किंतु, जैसी की स्थिति यहां है, सम्मतिजनित संव्यवहार द्वारा किया जाता है—वहां ऐसी स्थिति में 'अनिवार्य अर्जन' की कोई संकल्पना नहीं होती है, जिससे अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

13. श्री सेन ने **बिहार राज्य विद्युत् बोर्ड और अन्य** बनाम **पटना इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई कंपनी लिमिटेड और एक अन्य**[1] वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया। उक्त मामले में तारीख 5 जनवरी, 1973 को राज्य विद्युत् बोर्ड ने तारीख 5 फरवरी, 1974 की समाप्ति पर अनुज्ञप्तिधारी के उपक्रम को खरीदने के विकल्प का प्रयोग किया। तारीख 2 फरवरी, 1974 को, 1974 का अध्यादेश सं० 50 प्रख्यापित किया गया, जिसके द्वारा 1910 के अधिनियम की धारा 7-क प्रतिस्थापित की गई, जिससे कि बाजार-मूल्य की संकल्पना को कम करके बही-मूल्य की संकल्पना में परिवर्तित किया जा सके। उक्त अध्यादेश का 1974 के अध्यादेश सं० 83 द्वारा नवीकरण किया गया और पश्चात्कथित अध्यादेश का 1974 के अध्यादेश सं० 123 द्वारा नवीकरण किया गया। उपक्रम का कब्जा तारीख 5/6 फरवरी, 1974 को लिया गया। तारीख 15 जनवरी, 1975 को अंतिम अध्यादेश का स्थान लेने के लिए 1975 का बिहार अधिनियम सं० 15 अधिनियमित किया गया। तारीख 10 जनवरी, 1976 को 1976 का बिहार अधिनियम सं० 7 पारित किया गया और उसका प्रवर्तन तारीख 2 फरवरी, 1974 से भूतलक्षी बनाया गया, जब 1974 का प्रथम अध्यादेश सं० 50 जारी किया गया था।

उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्रय करने के विकल्प का प्रयोग 1974 के अध्यादेश सं० 50 के जारी किए जाने से पूर्व किया गया था। अतः अनुज्ञप्तिधारी असंशोधित धारा 7-क के अधीन बाजार-मूल्य के लिए हकदार था। उच्च न्यायालय ने वस्तुतः यह दृष्टिकोण अपनाया कि जब एक बार विकल्प का प्रयोग कर दिया गया और वह संसूचित भी कर दिया, उन सभी प्रसंगतियों सहित, जो विकल्प से संलग्न रहती हैं, जिनमें विकल्प में विवक्षित विशेष कीमत के संबंध में भी अनुबंध भी सम्मिलित है, विकल्प दोनों पक्षकारों के लिए आबद्धकर होता है और क्रय-कीमत को प्राप्त करने का अधिकार वाद-वस्तु में स्पष्ट कर दिया गया था। उच्च न्यायालय ने इस संबंध में यह तर्क दिया—

> "......उस समय, जब अधिनियम की धारा 7-क के अधीन अपीलार्थी द्वारा विकल्प का प्रयोग किया गया, प्रत्यर्थी-कंपनी धारा 7-क की उपधारा (2) के अनुसार उपक्रम के बाजार-मूल्य को अवधारित कराने के लिए हकदार थी। अतः प्रत्यर्थी-कंपनी और अपीलार्थी के बीच यह विवक्षित संविदा थी कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी-कंपनी को उसके द्वारा उपक्रम को खरीदे जाने की स्थिति में, उपक्रम की बाजार-कीमत का संदाय करेगा। अपीलार्थी द्वारा क्रय के विकल्प का प्रयोग 1974 के बिहार अध्यादेश सं० 50 द्वारा अधिनियम की धारा 6 और 7-क में संशोधन से पूर्व किया गया था। अतः अपीलार्थी प्रत्यर्थी-कंपनी को धारा 7-क के असंशोधित उपबंध के अनुसार उपक्रम के बाजार-मूल्य का संदाय करने के लिए दायी है..........."

> "......दूसरे शब्दों में, जब विकल्प का प्रयोग किया जाता है, तब अनुज्ञप्तिधारी उपक्रम को बेचने के लिए आबद्ध है और संबंधित प्राधिकरण उपक्रम को खरीदने के लिए आबद्ध है। यह दलील स्वीकार करना कठिन है कि प्रत्येक पक्षकार पर यह बाध्यकर प्रभाव विक्रय-कीमत या संव्यवहार के लिए प्रतिफल के नियतन के बिना होगा। जैसे ही अधिनियम की धारा 6 में यथावर्णित सूचना की तामील द्वारा क्रय

[1] ए० आई० आर० 1982 कलकत्ता 74.

करने के लिए विकल्प के प्रयोग के पश्चात् यह प्रक्रम आ जाता है, संबंधित प्राधिकरण को उपक्रम के बाजार-मूल्य के संदाय पर उपक्रम को खरीदना होता है, जिसे अधिनियम की धारा 7-क के उपबंध के अनुसार अवधारित किया जाएगा........."

"उपक्रम के बाजार-मूल्य को प्राप्त करने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) और अनुच्छेद 31 (2) अर्थांतर्गत ऋण या वाद-वस्तु है........."

उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि संशोधन—प्रक्रियाओं से संविधान के अनुच्छेद 31 (2) के अधीन अनुज्ञप्तिधारियों के मूल अधिकारों का उल्लंघन होता था।

14. अंतिम विश्लेषण में, श्री सेन के निवेदनों में वस्तुतः जिस चीज पर जोर दिया है, वह यह है कि सरकार द्वारा उपक्रम के प्रबंध-ग्रहण में उपक्रम के 'राष्ट्रीयकरण' का तत्व विद्यमान रहता है और परिणामतः अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्यों के कार्यान्वित किए जाने का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। इस मामले में दिए गए तर्क इस संबंध में रोचकता से रहित नहीं है कि अंतिम विश्लेषण में विधि का रूप और अंतर्वस्तु कैसी होनी चाहिए, जिसके द्वारा अनुच्छेद 39 (ख) के उद्देश्यों की पूर्ति की ईप्सा की गई है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के विनिश्चय में, जिसका श्री सेन ने अवलंब लिया है, विद्युत् बोर्ड द्वारा अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण का आग्रह नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त, अनुज्ञप्तिधारियों के अधिकारों की संकल्पना, जो अधिकार उस विकल्प के प्रयोग में स्पष्ट हुई, जिसे कलकत्ता उच्च न्यायालय ने महत्त्वपूर्ण माना, अपीलाधीन निर्णय में मुंबई उच्च न्यायालय को महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं हुई।

15. श्री अंध्यरुजिन ने 1910 के अधिनियम के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति के अनुसरण में चलाए जाने वाले विद्युत् प्रदाय उपक्रम के कारबार के अनिवार्यतः कानूनी स्वरूप पर जोर दिया और उक्त अधिनियम और विद्युत् प्रदाय अधिनियम, 1948 के उपबंधों से इस संबंध में कोई शंका शेष नहीं रहती है कि अनुज्ञप्ति और तद्धीन संक्रियाएं पूर्णतः कानूनी उपबंधों द्वारा नियंत्रित हैं। पश्चात्कथित अधिनियम की धारा 57 में यह अपेक्षा की गई है कि उपभोक्ताओं से उद्गृहीत विद्युत् के उपभोग हेतु प्रभार उक्त अधिनियम की अनुसूची 6 में विहित मामलों को नियंत्रित करने वाले वित्तीय सिद्धांतों के अनुसार होंगे। उक्त अनुसूची द्वारा अनुज्ञप्तिधारी के लाभों को सीमित किया गया है और उसमें यह बताया गया है कि लाभों को सीमित करने वाले उपबंधों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए वे किस प्रकार निकाले जाने चाहिए। श्री अंध्यरुजिन ने **गुजरात विद्युत् बोर्ड** बनाम **गिरधारीलाल मोतीलाल और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया—

".........यह राज्य विद्युत् बोर्ड को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने की एक रीति है, जिसके प्रयोग द्वारा अनुज्ञप्तिधारियों के सांपत्तिक अधिकार प्रभावित हो सकते हैं। धारा 6 (1) द्वारा राज्य विद्युत् बोर्ड को अनुज्ञप्तिधारी की शक्ति वापस लेने के लिए शक्ति प्रदत्त की गई है। ऐसी शक्ति का प्रयोग पूर्णतः विधि के अनुसार किया जाना चाहिए........."

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया।)

[1] [1969] 1 एस० सी० आर० 589, पृष्ठ 592-93.

16. श्री अंध्यरुजिन ने यह निवेदन किया कि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि प्राइवेट उद्यम द्वारा भी प्रदत्त विद्युत् अनुच्छेद 39-ख के प्रयोजन के लिए 'समाज का तात्त्विक संसाधन' थी और वह विधायी युक्ति (उपाय) जिसके द्वारा राज्य अनुच्छेद 39-ख के इस उद्देश्य को प्राप्त करने की ईप्सा करता है कि उक्त तात्त्विक संसाधन के स्वामित्व और नियंत्रण का इस प्रकार वितरण किया जाएगा जिससे कि सामान्य हित की अधिकतम पूर्ति हो सके, तत्त्व की अपेक्षा प्ररूप अधिक है। यदि राज्य इस विशेष विधायी युक्ति के बजाय 'रकम' के अवधारण के लिए उन्हीं सिद्धातों के साथ प्रबंध-ग्रहण हेतु पृथक् विधि अधिनियमित किया होता, तो विद्वान् काउंसेल के कथनानुसार, अनुच्छेद 31-ग के अधीन संरक्षण के लिए उसकी पात्रता के दृष्टिकोण से उसे चुनौती नहीं दी जा सकती थी। विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि सारत: उससे स्थिति में अंतर नहीं आना चाहिए, यदि राष्ट्रपति की अनुमति से विधि को अधिनियमित करने की अधिक सामान्य विधायी युक्ति द्वारा उस परिणाम को प्राप्त करने की ईप्सा की जाती है, जिसके कारण, 1910 के अधिनियम के अधीन प्रबंध-ग्रहण को अप्रभावित करते हुए, अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्य को कार्यान्वित करने के आर्थिक खर्चे के बोझ को उठाने में राज्य की समर्थता कम हो गई। विद्वान् काउंसेल का यह कहना है कि मामले के तर्कों में, जिन्हें उच्च न्यायालय ने स्वीकार किया, विधान के सार की अपेक्षा प्ररूप पर अधिक जोर दिया गया था।

17. विद्युत् अधिनियम, 1910 के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति के अनुसरण में विद्युत् प्रदाय उपक्रम का कारबार, जो लोक उपयोगिता सेवा है, उक्त कानून के निबंधनों द्वारा व्यापक रूप से नियंत्रित है। उन निबंधनों में, जिनके आधार पर अधिकार अर्जित और प्रदत्त किया जाता है, कानून द्वारा एकपक्षीय रूप में उपांतरण किया जा सकता है। ऐसे निबंधनों में, जिनमें अनुज्ञप्तिधारी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए एकपक्षीय रूप से परिवर्तन किया जा सकता है, प्रबंध-ग्रहण के लिए संदेय कीमत के निर्धारण से संबंधित निबंधन भी सम्मिलित है। इस प्रतिपादना को स्वीकार करना कठिन है कि कीमत के संदाय का अधिकार उपक्रम के स्वामित्व के वास्तविक अंतरण से स्वतंत्र रूप में या उससे पूर्व भी 'वाद-वस्तु' में स्पष्ट हो जाता है। ऊपर निर्दिष्ट फाजिलका इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी वाले मामले में, निस्संदेह यह अभिनिर्धारित किया गया कि उपक्रम के स्वामित्व का अंतरण सम्मतिजनित द्विपक्षीय क्रियाकलाप का परिणाम था। तथापि, ऊपर निर्दिष्ट गुजरात विद्युत बोर्ड बनाम गिरधारीलाल मोतीलाल वाले मामले में, जिसमें 1910 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया, यह अभिनिर्धारित किया गया कि उनके द्वारा राज्य विद्युत् बोर्ड को 'अनुज्ञप्तिधारी की संपत्ति ले लेने की' शक्ति प्रदत्त की गई है।

18. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि विद्युत् अधिनियम 1910 के उपबंधों के बारे में यह मान भी लिया जाता है और उन्हें इस प्रकार समझ भी लिया जाता है कि उनमें केवल सम्मतिजनित विक्रय की युक्ति द्वारा ही प्राइवेट स्वामित्व वाले उपक्रम के राज्य द्वारा प्रबंध-ग्रहण का उपबध किया गया है, तब भी स्वत: यह परिस्थिति इस प्रश्न का विनिश्चायक तत्त्व नहीं होगी कि क्या 1976 के संशोधन-अधिनियम का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों से कोई प्रत्यक्ष और युक्तियुक्त संबंध नहीं है। स्वयं उच्च न्यायालय ने, 1910 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों के, जिनके द्वारा प्रबंध-ग्रहण संभव बनाया गया है, उद्देश्यों के प्रति निर्देश करते हुए, यह मत व्यक्त किया—

"विद्युत् अधिनियम, 1910 में, जैसा कि वह अधिनियमित किया गया है, विद्युत् उपक्रमों के अनिवार्य क्रय का उपबंध करके विद्युत् के तात्त्विक स्रोतों पर राज्य का नियंत्रण अनुध्यात किया गया है।"

किंतु जहां तक संशोधन अधिनियम का संबंध था, उच्च न्यायालय ने यह कहा—

"यह पहले ही मूल अधिनियम का उद्देश्य था : अत: यह 1976 के संशोधन-अधिनियम का उद्देश्य नहीं माना जा सकता है।"

उच्च न्यायालय का यह तर्क कि संशोधन-अधिनियम, 1976 का, जो मूल अधिनियम में सम्मिलित किया गया और जो उसका एक भाग हो गया, ऐसा कोई प्रयोजन नहीं होगा, मूल अधिनियम के प्रयोजन के बारे में स्वयं अपने दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है। यह कहने के पश्चात् कि संशोधन-अधिनियम के सुसंगत उपबंधों में मूल अधिनियम के समान उपक्रम के उद्देश्य का उपबंध नहीं था, उक्त आधार के तर्कसंगत निष्कर्ष के रूप में, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संशोधन-अधिनियम का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्य से कोई संबंध नहीं था।

1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा यथासंशोधित, 1910 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का प्रभाव यह सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए समाज के तात्त्विक संसाधनों के नियंत्रण और स्वामित्व का अंतरण है कि उनका इस प्रकार वितरण किया जाता है, जिससे कि सामान्य हित की अधिकतम पूर्ति हो सके। वस्तुत: उक्त उपबंधों द्वारा इस पद के व्यापक अर्थ में 'राष्ट्रीयकरण' लाया गया है। 1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा इस सुधार के आर्थिक भार को सीमित करने की ईप्सा की गई।

'राष्ट्रीयकरण' पद से सरकार द्वारा प्राइवेट स्वामित्व वाले कारबार का अर्जन और नियंत्रण अभिप्रेत है (देखें ब्लैककृत 'ला डिक्शनरी', पंचम संस्करण, पृष्ठ 924)। मरेकृत 'ए न्यू इंगलिश डिक्शनरी ऑन हिस्टोरिकल प्रिंसिपल्स' (जिल्द 6, पृष्ठ 32) 'राष्ट्रीयकरण' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है—

"कारबार उद्यमों का, जो पहले प्राइवेट व्यक्तियों या निगमों के स्वामित्वाधीन थे और उनके द्वारा चलाए जाते थे, राष्ट्रीय सरकार द्वारा अर्जन और संचालन। अधिकांश राज्यों ने अपनी डाक और तार पद्धतियों का राष्ट्रीयकरण किया है और अनेक राज्यों ने रेलवे और परिवहन के अन्य साधनों का राष्ट्रीयकरण किया है। संपूर्ण उत्पादक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना समाजवाद की नीति है।"

समाज के तात्त्विक संसाधनों के राष्ट्रीयकरण का विचार ऐसी रीति में समाज में उक्त संसाधन के वितरण के विचार से विलग नहीं किया जा सकता है, जिससे सामान्य हित की पूर्ति होती है। अब सजातीय और पारिणामिक प्रश्न यह है कि क्या संशोधन-अधिनियम, 1976 के उपबंधों का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों से युक्तियुक्त और प्रत्यक्ष संबंध था। यह सच है कि अनुच्छेद 31-ग का संरक्षण केवल ऐसे उपबंधों को ही प्राप्त है, जो अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों को प्रभावी बनाने के लिए आधारभूत और सारभूत रूप से आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में अपने तर्क को ध्यान में रखते हुए यह दृष्टिकोण अपनाया है कि मूल अधिनियम में प्रबंध-ग्रहण का उपबंध अर्जन करने की शक्ति की कोटि में

आ सकता है, तथापि 1976 के संशोधन, अधिनियम के उद्देश्यों के बारे में, जिनके द्वारा केवल कीमत कम करना ही ईप्सित था, यह नहीं कहा जा सकता है कि वे उस शक्ति के भाग हैं और इसलिए वे अनुच्छेद 39-ख के साथ कोई संबंध स्थापित करने में असमर्थ हैं। ससम्मान हमारा यह कहना है कि यह तर्क दोषपूर्ण है।

1976 के संशोधन-अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के अनुरूप लाए गए इस आर्थिक सुधार के खर्च को वहन किए जाने योग्य बनाया गया है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसका अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के साथ कोई प्रत्यक्ष या युक्तियुक्त संबंध नहीं है। जब किसी विधायी अधिनियमिति को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि वह सरकार की न्यायिक शाखा—संविधानिक आदेश—के अनुरूप नहीं है, तब यह कहा जाता है कि उसका केवल एक कर्त्तव्य है—संविधान के अनुच्छेद को, जिसका अवलंब लिया जाता है, उस कानून के साथ रखना, जिसे चुनौती दी जाती है और यह विनिश्चय करना कि क्या पश्चात्कथित पूर्वकथित के अनुरूप है। (देखें संयुक्त राज्य **बनाम** बटलर—29 यू० एस० 1)

1976 के संशोधन-अधिनियम से उपाबद्ध वित्तीय ज्ञापन में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया है—

> "…………जहां तक महाराष्ट्र राज्य का संबंध है, यह नीति का विषय है कि महाराष्ट्र राज्य विद्युत् बोर्ड प्राइवेट विद्युत् उपक्रम खरीद रहा है जैसे और जब उनकी अनुज्ञप्तियां समाप्त होती हैं। यह नीति जारी रखी जाएगी और बोर्ड इसके पश्चात् भी प्राइवेट उपक्रमों का प्रबंध-ग्रहण करता रहेगा, जैसे और जब उनकी अनुज्ञप्ति-अवधियां समाप्त होंगी।
>
> भारतीय विद्युत् अधिनियम की धारा 7-क के अधीन, अनुज्ञप्ति के प्रतिसंहरण पर और उपक्रम के क्रय पर, यथास्थिति, बोर्ड या राज्य सरकार को प्रतिकर का या उपक्रम के बाजार-मूल्य पर क्रय कीमत का संदाय करना होता है। सामान्य अनुक्रम में, यह बाजार-मूल्य बहुत ऊंचा होगा। संशोधित अधिनियम के अधीन बोर्ड या राज्य सरकार से प्रतिकर या क्रय-कीमत के रूप में उपक्रम के अवक्षीण बही-मूल्य का संदाय करने की अपेक्षा की जाएगी। यह वर्तमान अधिनियम के अधीन संदत्त किए जाने वाले प्रतिकर या क्रय-कीमत से कम होगा।
>
> चूंकि राज्य सरकार द्वारा विद्युत् उपक्रम का क्रय विरल संभावना है, अतः सरकार के अंतर्वलित व्यय की सीमा निश्चित शुद्धता के साथ पहले से नहीं बताई जा सकती है।"

19. सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए समाज का आर्थिक भार समतावादी और उदारवादी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को संविधान की भावना के अनुरूप लाने के लिए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन में अंतर्वलित कार्यकलाप का अभिन्न अंग है। आर्थिक व्यय के रूप में आर्थिक परिवर्तन का खर्च अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्यों के साथ एकीकृत तत्त्व हैं। न्यायालय को, आर्थिक नीति के विषयों में, समय और परिस्थितियों द्वारा यथाप्रतिबद्ध, विधायी निर्णय का सम्मान करना चाहिए। सामाजिक परिवर्तन में निहित बुद्धिमत्ता, कुछ मात्रा में, समय की अनुभूत आवश्यकताओं पर निर्भर करती है।

1972 की रिट याचिका सं० 457 और 458 में भी ऐसी ही दलील दी गई थी। उक्त निर्णय के पैरा 16 में हमने सामाजिक और आर्थिक सुधार के खर्चों को एकीकृत करने की अपरिहार्यता पर चर्चा की थी, राज्य पर आर्थिक भार के रूप में—नीति के निदेशक सिद्धांतों को कार्यान्वयन के साथ।

20. तदनुसार हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि 1976 के संशोधन-अधिनियम के उपबंधों का अनुच्छेद 39-ख के उद्देश्य से प्रत्यक्ष और सारभूत संबंध है और इसलिए वे अनुच्छेद 31-ग के संरक्षण के लिए हकदार हैं। यदि आक्षेपित विधि को ऐसा संरक्षण प्राप्त हैं, और हम वस्तुतः यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उसे ऐसा संरक्षण प्राप्त है, तो अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उल्लंघन के आधार पर उसे दी गई सभी चुनौतियां अनिवार्यतः असफल रहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, गुणागुण के आधार पर भी, अनेक दलीलें सारहीन हैं। उदाहरणार्थ, इस शिकायत में कोई सार नहीं है कि सर्विस लाइनों को रकम की संगणना से अपवर्जित कर दिया गया था। उस पर भी 1972 की रिट याचिका सं० 457 और 458 में निर्णय के पैरा 29 में विचार किया गया है। इसी प्रकार यह दलील भी सराहनीय है कि 'गुडविल' के मूल्य को रकम की संगणना से अपवर्जित कर दिया गया है।

21. जहां तक 1985 की सी० ए० सं० 243 में कंपनी की प्रतीण अपील का संबंध है, जिसमें कंपनी ने उस सीमा तक उच्च न्यायालय के निर्णय की शुद्धता को चुनौती दी है, जिस सीमा तक वह कंपनी के विरुद्ध गया है, हम ऐसे निष्कर्ष निकालने में, जो उच्च न्यायालय ने उक्त पहलुओं पर निकाले थे, उच्च न्यायालय के तर्कों का अनुमोदन करते हैं। इनमें से कुछ पहलुओं पर 1972 की रिट याचिका सं० 457 और 458 में तथा 1974 की रिट याचिका सं० 5, 14 और 15 में विचार किया गया है।

22. परिणामतः, पूर्वगामी कारणों से 1985 की सिविल अपील सं० 4113 और 1985 की सिविल अपील सं० 344 मंजूर की जाती हैं, उच्च न्यायालय का तारीख 20 जुलाई, 1984 का अपीलाधीन निर्णय, जहां तक उसमें संशोधन अधिनियम, 1976 के कतिपय उपबंधों को असंवैधानिक घोषित किया गया है, अपास्त किया जाता है और 1977 की सिविल याचिका सं० 1115 खारिज की जाती है। कंपनी द्वारा फाइल की गई 1985 की सिविल अपील सं० 243 असफल रहती है और खारिज की जाती है। मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, हम पक्षकारों को यहां के और निचले न्यायालयों में हुए खर्चों को स्वयं वहन करने का निदेश करते हैं। तदनुसार आदेश किया गया।

अपील मंजूर की गई।

न०